जाति को लेकर जारी रहेगी राजनीति

राहुल वर्मा

जिस मोदी सरकार को घेरने के लिए नीतीश कुमार ने जातीय गणना का दांव चला, उसके पास रोहिणी आयोग की रपट है, जो एक नई बहस शुरू कर सकती है

बिहार में जातीय गणना के दांव ने राष्ट्रीय राजनीति में एक नई हलचल पैदा कर दी है। भाजपा और कांग्रेस जैसे प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल भी इस मामले में एक दूसरे को घेर रहे हैं। कांग्रेस जहां देश भर में जातिवार जनगणना की मांग कर रही है, वहीं भाजपा कांग्रेस को इस आधार पर घेर रही है कि संप्रग सरकार के दौरान जनगणना के साथ ही जातिगत आधार पर जो आंकड़े जुटाए गए थे, उन्हें सार्वजनिक करने में कांग्रेस ने कोताही क्यों की? इतना ही नहीं, भाजपा इस बात पर भी सवाल उठा रही है कि कर्नाटक में सिद्दरमैया की पिछली सरकार के दौरान भी राज्य में जातिवार गणना हुई थी, लेकिन उसे अब तक सार्वजनिक क्यों नहीं किया गया? कुछ ऐसा ही कांग्रेस शासित राजस्थान में भी हुआ। खुद कांग्रेस में ही इसे लेकर मत-विभेद दिखता है। 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी' से जुड़े राहुल गांधी के आह्वान पर वरिष्ठ कांग्रेस नेता अभिषेक मनु सिंघवी ने इससे देश में 'बहुसंख्यकवाद' को बढ़ावा मिलने की बात कही, लेकिन जब पार्टी में उनकी इस बात को लेकर असंतोष बढ़ा तो उन्होंने इसका ठीकरा अपने निजी स्टाफ पर फोड़ दिया और एक्स पर अपनी उस पोस्ट को डिलीट कर दिया। जातीय गणना को लेकर अभी तक तय नहीं कि इसके क्या निहितार्थ होंगे। इस पर कुछ भी कहना जल्दबाजी होगा। क्या इससे देश में नई राजनीतिक क्रांति का सूत्रपात होगा या फिर यह महज राजनीतिक शिगूफा बनकर कुछ समय के बाद फुस्स हो जाएगा?

ऐसा प्रतीत होता है कि सत्ता में रहने वाला कोई भी दल जातीय गणना के जिन्न को बोतल से बाहर नहीं निकालना चाहता। इस मामले में नीतीश कुमार अपवाद रहे, क्योंकि शायद उनके पास सीमित राजनीतिक विकल्प हैं। एक समय भाजपा भी जातिवार गणना की मांग को लेकर खासी मुखर थी, लेकिन बाद में उसने इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया। अभी तक संप्रग सरकार के दौरान जुटाए गए जातिवार आंकड़े भी जारी नहीं किए गए। इसके पीछे कुछ तकनीकी वजह बताई गई। वहीं, पिछड़ा वर्ग के आरक्षण की पड़ताल के लिए गठित जस्टिस रोहिणी आयोग को भी एक के बाद एक विस्तार मिलते रहे और आयोग की रपट भी अभी तक संसद के पटल पर नहीं रखी जा सकी है। जब उस रपट का ब्योरा सामने आए तो संभव है कि जाति विमर्श को लेकर एक नई तान छिड़े। इसीलिए बिहार की जातीय गणना को अभी मंडल का अगला चरण कहना उचित नहीं होगा।

बिहार की जातीय गणना के आंकड़ों को लेकर भी कई तरह के सवाल उठाए जा रहे हैं। हालांकि यह भी एक तथ्य है कि ये आंकड़े हतप्रभ करने वाले नहीं।

अवधेश राजपूत

ये अपेक्षित अनुमान के ही करीब हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि बिहार में ब्राह्मण और राजपूत जैसी अगड़ी जातियों की संख्या घटी है और अन्य पिछड़ा वर्ग और दलितों की संख्या बढ़ी है। इसके पीछे के कारणों की पड़ताल करेंगे तो भी कुछ नया नहीं निकलेगा। जिन समुदायों में अधिक शिक्षा रही है और उनका आर्थिक उन्नयन हुआ है तो स्वाभाविक रूप से उनकी आबादी भी उसी अनुपात में घटी है। आर्थिक विकास और नए अवसरों के चलते वे देश-विदेश में नई जगहों पर भी जाकर बसे हैं। इसलिए संख्या के आधार पर बड़े वर्गों के आर्थिक एवं शैक्षणिक आंकड़ों की तस्वीर जब तक सामने नहीं आएगी तब तक अनिश्चितता का भाव बना रहेगा। क्या उसके बाद एक नया राजनीतिक तूफान दस्तक दे सकता है? इसमें कोई दोराय नहीं कि ओबीसी और दलितों के बीच कुछ विशेष जातियों को आरक्षण का अधिक लाभ मिला है। भाजपा शायद इस पहलू को अपनी आगामी रणनीति के केंद्र में रख सकती है। जाति और आरक्षण के विमर्श में यही कहा जाता है कि ओबीसी में जहां यादवों और कुर्मियों को इसका सबसे अधिक लाभ मिला तो दलितों में जाटव इसके सबसे बड़े लाभार्थी रहे। पिछले कुछ चुनावों से भाजपा ओबीसी में गैर-यादवों और दलितों में गैर-जाटवों को साधने की रणनीति पर ही काम करती आई है जिसका उसे राजनीतिक लाभ भी मिला है। इसलिए सबकी नजरें अब जस्टिस रोहिणी आयोग की रपट पर लगी हैं, जिसमें आरक्षण के दो-स्तरीय और तीन-स्तरीय विभाजन की अटकलें लगाई जा रही हैं। अगर जातीय जनगणना की मांग तूल पकड़ती है तो क्या भाजपा रोहिणी आयोग की रपट को सार्वजनिक करेगी?

निःसंदेह, ओबीसी देश में एक बड़ी राजनीतिक ताकत हैं और सभी दल उन्हें लुभाने में लगे हैं। ओबीसी की इसी महत्ता को देखते हुए ही कांग्रेस बिहार से आए आंकड़ों को शायद कर्नाटक के चुनावों में मिली सफलता के साथ भी जोड़कर देख रही है। हालांकि हकीकत यही है कि कांग्रेस ने आजादी के बाद से ही खुद को ओबीसी की राजनीति में फिट नहीं किया। उसने काका कालेलकर आयोग या मंडल आयोग की रपट पर कोई कार्रवाई ही नहीं की। कांग्रेस ने ओबीसी के बजाय सवर्ण जातियों, दलितों और मुसलमानों को ही अपनी राजनीति के केंद्र में रखा। यही कारण रहा कि कांग्रेस के मुकाबले समाजवादी राजनीति का वह ध्रुव निरंतर अपनी राजनीतिक जमीन मजबूत करता गया, जिसका मुख्य आधार ओबीसी ही रहा। कांग्रेस ने 2006 में ओबीसी को लेकर इस राजनीतिक भूल सुधार का प्रयास अर्जुन सिंह की उस पहल के माध्यम से किया जिसमें उच्च शिक्षण संस्थानों में ओबीसी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रविधान हुआ। हालांकि तब तक कांग्रेस के लिए ओबीसी राजनीति की गाड़ी पकड़ने के लिए बहुत देर हो गई थी।

बिहार की जातीय गणना के राष्ट्रीय राजनीति पर असर की बात करें तो विपक्षी खेमे में ही इसे लेकर विरोधाभास है। तृणमूल कांग्रेस इसके पक्ष में नहीं दिखती। वहीं, जिस मोदी सरकार को घेरने के लिए नीतीश कुमार ने यह दांव चला है तो उसके पास अभी जस्टिस रोहिणी आयोग की रपट है, जिसके सार्वजनिक होने से ओबीसी राजनीति का ऊंट करवट बदल सकता है। वैसे भी पीएम मोदी गरीबी को सबसे बड़ी जाति बताकर यही संदेश दे रहे हैं कि कल्याणकारी योजनाओं के रूप में उनके पास इसकी प्रभावी काट है तो हिंदुत्व का व्यापक छत्र भी जातिवाद की इस राजनीति का कोई कारगर तोड़ साबित हो सकता है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फार पालिसी रिसर्च में फेलो हैं)
response@jagran.com